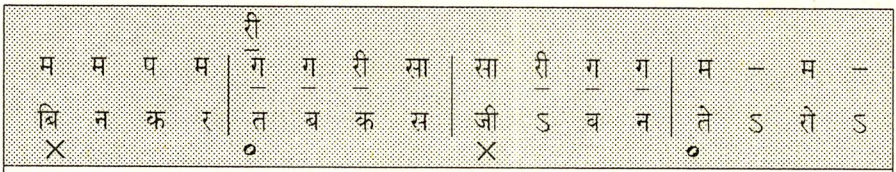

प्रतिभासंपन्न रचनाकार एवं वाग्गेयकार

पं. एस. सी. आर. भट

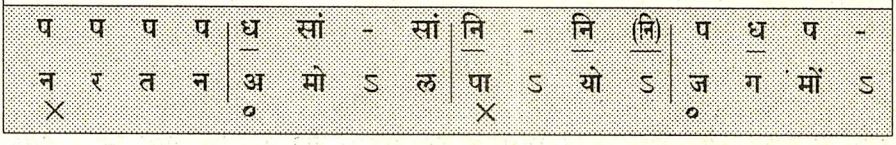

पिछले अध्याय में हमने एक गायक के रूप में अण्णासाहब के सांगीतिक व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त किया। मैंने कहा था कि उनकी गायन-शैली में विभिन्न घरानों की खास खास विशेषताओं का समावेश था और ये विशेषताएं उसमें एकरूप होकर मिल गई थीं। इन सब घरानों के सम्मिश्रण से उन्होंने अपनी एक स्वतंत्र गायकी बना ली थी, जिसपर अधिकतर प्रभाव जयपुर-मनरंग घराने का तथा ग्वालियर और आग्रा घराने का था। फिर बाद में किराना घराने के तहत अब्दुल करीमखांसाहब के स्वर-लगाव और अल्लादियाखांसाहब की फिरत को भी उन्होंने अपनी गायन-शैली में अंतर्भूत कर लिया था।

अब हम अण्णासाहब के एक अत्यंत उज्ज्वल पक्ष पर ध्यान देंगे - 'डॉ. रातंजनकर एक रचनाकार और वाग्गेयकार के रूप में।' अण्णासाहब के सांगीतिक व्यक्तित्व का यह अंग इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि आजकल की पीढ़ी उन्हें वाग्गेयकार के रूप में अधिक जानने लगी है; क्योंकि आजकल उनकी बंदिशों का उपयोग अन्यान्य महफिलों में काफी मात्रा में होने लगा है। अण्णासाहब के अंदर यह जो रचनाकार की प्रतिभा थी उसका प्रस्फुटन बहुत पहले याने १९२०-२२ में, जब वे उम्र से बीस-बाईस के ही थे तब हुआ था। उस काल में उन्होंने सबसे प्रथम एक रचना बनाई, जिसमें उन्होंने महात्मा गांधी के सत्याग्रह का वर्णन प्रतीकात्मक शैली में किया था। हम जानते ही हैं कि १९२०-२२ में गांधीजी का सत्याग्रह-आंदोलन आरंभ हो चुका था और इस आंदोलन ने भारत के सभी नागरिकों को प्रभावित और कार्यप्रवण कर दिया था। इस बात को लेकर अण्णासाहब ने बिलावल राग में जो बंदिश बनाई वह इस प्रकार थी-

मुरली बजावे मोहना । भूल गई सब सुधबुध मो मन ॥
बांसुरी की धुन संग, नाचत सब द्रुम छननन पायल बाजे ॥

स्पष्ट है कि उन्होंने मोहनदास नाम को लेकर मनमोहन गोपालकृष्ण के प्रतीक की योजना इसमें

की थी । वस्तुत: बंबई में उनकी हिंदी भाषा से उतनी घनिष्ठता नहीं हुई थी । किंतु सहजभाव से उनसे यह रचना बन पड़ी थी । लखनऊ जाने से पहले दो-तीन बंदिशें और उन्होंने रची थीं । यह पहली रचना बन जाने के बाद अण्णासाहब ने उसे पं. भातखंडेजी के सुहृद एवं शिष्य वकीलसाहब शंकरराव कर्नाड़ को सुना दी । क्योंकि उन्हें अपने गुरुवर भातखंडेजी का रवैय्या मालूम था। जब भातखंडेजी स्वयं कोई बंदिश बनाते तो शंकररावजी को नियमत: सुनाते । यदि कर्नाड़जी के द्वारा उसे मान्यता मिल जाए, तभी वह ठीक मानी जाती थी, अन्यथा नहीं । अण्णासाहब ने भी सोचा कि यह रचना शंकररावजी को दिखानी चाहिए। यह घटना मुझे बताते हुए अण्णासाहब ने कहा था कि शंकररावजी ने मेरी उस पहली रचना को काफी पसंद किया; इससे मेरा उत्साह बढ़ा । तो शंकररावजी के प्रोत्साहन का फल यह हुआ कि उनका बंदिशें बनाने का सिलसिला आगे खूब चला । लखनऊ जाने से पूर्व उन्होंने २-३ और रचनाएं की थीं, किंतु लखनऊ पहुंचने के बाद उन्होंने एक से एक सुंदर बंदिशें बनाईं, यहांतक कि उनकी कुछ बंदिशों को विशुद्ध पारंपरिक बंदिश समझकर जानेमाने उस्ताद लोग भी गाने लगे थे; गुरुजन अपने शिष्यों को ये बंदिशें सिखाते थे । और उसमें नाट्यमयता यह रही कि बंदिश में सब समय अपनी नाममुद्रा न रखने की अण्णासाहब की रीति के कारण बहुत अरसे तक यह रहस्य छिपा ही रहता था । जब बात खुल जाती तब सच्चे कद्रदान खुले मन से दाद देते तो खुदपरस्त गवैये उन बंदिशों को किनारे रख देते । किंतु अण्णासाहब की बंदिशें अपने आप में ही इतनी सौष्ठवयुक्त, राग के अलक्षित सौंदर्य का उद्घाटन करनेवाली और सांगीतिक निरूपण से ओतप्रोत रहती थीं कि किसीके स्वागत या विरोध की उनके लिए आवश्यकता ही नहीं थी ।

अण्णासाहब ने एक बंदिश अपने गुरुवर पं. भातखंडेजी के जन्मदिवस के अवसर पर १९३३-३४ में उनके अभिनंदन में बनाई थी - यमनी बिलावल में विलंबित ख्याल की । उसके शब्द इस प्रकार हैं-

जुग जुग जियो रे मेरे गुरुराई । चतुर सुजान गुणनिधान,
अपनो संवारो काज ॥
जो मोपै दया कीनो तें का विध होऊं अब उतराई ।
देहो बताय ॥

तो यह 'कांपोजीशन' उन्होंने अण्णासाहब को उनके जन्मदिवस पर समर्पित किया । पंडितजी ने भी उसे पसंद किया, उसके सांगीतिक निरूपण को और उसके साहित्य को भी । यहां तक कि आपने इस बंदिश का अंतर्भाव अपनी क्रमिक पुस्तकमालिका के पांचवें भाग में यमनी बिलावल के अंतर्गत समाविष्ट किया है । सोचने की बात है कि पं. भातखंडे जैसे प्रखर, पारंगत, तपस्वी संगीतसौंदर्यवेत्ताद्वारा बंदिश का इस हदतक स्वागत होना कोई सामान्य बात नहीं है ।

नव-राग-निर्माण

लखनऊ आ जाने के बाद अण्णासाहब का बंदिशें रचने का उपक्रम अधिक उत्साहपूर्वक चलता रहा किंतु इस उपक्रम में उनकी रचनात्मक प्रतिभा का एक और आयाम जुड़ गया। अण्णासाहब ने कुछ अभूतपूर्व नए रागों का निर्माण भी किया और ये राग आगे चलकर इतनी मान्यता

पा गए कि आज आम महफिलों में उनका गायन होना अवश्यंभावी हो गया है। उनके बनाए नए रागों के बारे में आज संगीतवेत्ताओं तक में ऐसी भ्रांत धारणा मिलती है कि यह राग पुराना और पारंपरिक ही है। इतना उन रागों का स्वरूप कसा हुआ और ठोस बन पड़ा है।

इस रागनिर्माण की मानसिक पृष्ठभूमि में बाहरी प्रेरणा और भीतरी तकाजा, दोनों विद्यमान थे। अधिकतर तो यह उनके भीतर की सर्जनात्मक प्रतिभा का तकाजा था। और सौभाग्यवश उसके लिए अनुकूल पृष्ठभूमि भी प्राप्त हो सकी। लखनऊ जाने के बाद कर्नाटक संगीत विद्वानों से अण्णासाहब का संपर्क बढ़ता गया। अक्सर वे मद्रास की तरफ जाया करते। इससे आप कर्नाटक संगीत के काफी परिचित हो गए थे, यानी प्रत्यक्ष प्रयोगात्मक रूप से। तो इस सिलसिले में कर्नाटक शैली में पूर्व कल्याणी नामक जो राग है उसकी ओर अण्णासाहब का ध्यान आकृष्ट हुआ। उस राग के साथ हिंदुस्तानी संगीत की शैली को मिलाकर अण्णासाहब ने 'पूर्व कल्याण' नामक राग की सर्जना की। और उसमें 'होवन लागी सांझ' बंदिश बनाई, जो चंद दिनों में काफी प्रचार में आई। क्योंकि उन दिनों लखनऊ मैरिस कॉलेज से निकलनेवाले 'संगीत' नाम के त्रैमासिक मुखपत्र में यह बंदिश मय स्वरलिपि के छपकर आई। (यह मुखपत्र डेढ़ एक साल तक चला, आगे बंद हो गया।) तो इस मुखपत्रमें यह बंदिश छपी थी किंतु रचनाकार का नाम नहीं दिया गया था। इस बातको लेकर आगे बड़ी नाट्यमय घटनाएं हुईं।

रोचक घटना

१९३३-३४ में प्रो. बी. आर्. देवधर किसी कार्यवश कलकत्ता पधारे थे। एक मित्र के यहां आपने 'संगीत' का वह अंक देखा और उसमें वह बंदिश उनकी नजरों में आई। उन्हें वह बंदिश बहुत पसंद आई; उस अंक को अपने साथ लेते गए। उस काल में हमारा बालमित्र कुमार गंधर्व उनके पास ही रहकर तालीम पाता था। देवधरसाहब ने कुमार को वह बंदिश सिखा दी। कुमारजी अक्सर लखनऊ आया करते थे। १९३६-३७ में जब वे लखनऊ आए तब उन्होंने हमारे गुरुबंधु एस्.सी.आर. भट को वह बंदिश सुनाई। उन्होंने कहा - "देखो भट, यह नई बंदिश मुझे काकाजी (देवधरसाहब) ने सिखाई है।" तबतक भट साहबको भी इसका पता नहीं था कि इसका रचनाकार कौन है। यों पं. भातखंडेजी की क्रमिक पुस्तक मालिका के छठे भाग में यह बंदिश तब तक छप गई थी; किंतु वह ग्रंथ उस समय हाल ही में प्रकाशित हुआ था और उसमें भी रचनाकार का नाम नहीं था। इसलिए बहुतों को उसका पता नहीं था। भट साहब को भी वह ग्रंथ तब तक देखने को नहीं मिला था। और न मुझे भी उसके बारे में कोई मालूमात थे और अण्णासाहब ने तब तक कभी इस इस बंदिश को गाया नहीं था। यों अपने अभ्यास के लिए किसी राग को नित्यप्रति गाने का उनका विधान रहता था। और मान लीजिए वे उस बंदिश को गाते तो भी उसकी ओर इस दृष्टि से देखनेवाला हमारा ज्ञान उस समय नहीं था। अस्तु। भटसाहब को कुमार ने वह बंदिश सुनाई और उन्हें वह बहुत प्यारी लगी।

दूसरे दिन भटसाहब गुरुवर से मिले तो सराहना के भाव से उन्होंने उन्हें बताया कि कल कुमार ने हमें एक बहुत बढ़िया बंदिश सुनाई; कोई पूर्वकल्याण राग वह बता रहा था। सब कुछ जानने के बाद अण्णासाहब ने मुस्कुराते हुए पूछा, "कुमार को यह बंदिश किसने सिखाई?" ... तब बातें खुल गईं और हम सबको इससे बड़ा सुख और आश्चर्य हुआ।

यहां प्रस्तुत राग के नामाभिधान के संबंध में कुछ बातें निर्णायक तौर पर बताना आवश्यक लगता है। 'पूरिया कल्याण' नाम से जो राग आजकल चलता है वह पूर्व कल्याण से न केवल भिन्न है, बल्कि उस राग की जमीन ही ढुलमुल है। कहने के लिए तो सब लोग दावा करते हैं कि पूरिया कल्याण बहुत पुराना राग है, लेकिन बात वैसी है ही नहीं। इसके लिए मैं सबूत भी दे सकता हूं। इसके संबंध में मेरी अनुभव की हुई बात मैं कहता हूं। उस्ताद अमीरखांसाहब यह बंदिश बहुत पहले गाया करते थे, हम लोग उनकी महफिलों में कई मर्तबा इसे सुन चुके थे। शायद वे इसलिए इस बंदिश को गाना पसंद करते थे कि उन्हें उसका हुलिया पुरानी पारंपरिक बंदिश की तरह लगता था। किंतु जब उन्हें पता चला कि यह रचना रातंजनकरजी की है तब से उन्होंने उसे गाना बंद कर दिया। यही हाल और भी कई एक उस्तादों का था, जिसका अनुभव मैंने स्वयं किया है। अस्तु, इस बात से यही सिद्ध होता है कि यह राग हमारे यहां पहले प्रचार में नहीं था। 'आज सो बना बन आई री मां' बंदिश बाद की बनी हुई बंदिश है – याने 'होवन लागी सांझ' के बाद। पूर्व कल्याण राग ही तो अण्णासाहब का बनाया हुआ है। अगर यह बंदिश बहुत पुरानी है तो क्या इस राग में कोई ध्रुपद और कुछ सादरे मिल सकते हैं? यदि राग पुराना होता उसमें एक से अधिक बंदिशों की रचना हो जाना जरूरी था। फिर कई घरानों में यह राग प्रचलित है ऐसा मान लिया जाए तो राग का प्रचलन एकम् एक बंदिश पर तो नहीं हो सकता। जैसे दूसरा उदाहरण लीजिए। 'रसिया हौं न जाऊं वाहू देश' यह मारु बिहाग की चीज है; लेकिन इसके अलावा और कोई भी चीज इस राग में नहीं मिलती। इसके मायने यही हैं कि अल्लादियाखां साहब ने उस राग की एक कल्पना बना ली और यह बंदिश रचा दी। इसे पहले यमनी बिहाग कहा जाता था। अल्लादियांखासाहब ने मारुबिहाग नाम प्रचलित किया। पूर्वा कल्याण भी एक नाम बनाया जाता है किंतु पूर्वा कल्याण हो या पूरिया कल्याण हो सब नाम कपोलकल्पित हैं क्योंकि रागरूप के साथ इन नामों का मेल ही नहीं बैठ पाता। जो भी गायक और वादक – मैं वादकों को भी इसमें लूंगा - पूरिया कल्याण के नाम से राग की अवतारणा करते हैं वे जबतक गंधार तक बढते हैं तब तक उसमें पूरिया की झलक रहती है किंतु ज्यों ही वे पंचम को छू लेते हैं त्यौं ही पूरिया की शक्ल गायब हो जाती है और पूरिया धनाश्री होने लगता है। फिर धैवत के परे जाने के बाद तो वे राग के स्वरूप को कतई कायम नहीं रख सकते। मेरा कहना है कि यदि हम राग के नाम के साथ न्याय बरतना चाहते हैं तो पूरिया कल्याण में कल्याण अंग भी स्पष्ट दीखना चाहिए और पूरिया अंग भी। गंधारपूरिया का जोरदार स्वर है और निषाद उसका संवादी बन जाता है। तो उसमें मं ग ध़ नि़ रे़ सा, ऐसी संगतियां आप लेते हैं और पूरिया खुलता है। लेकिन 'नि़ रे़ ग मं प' करने के बाद 'प मं ग मं रे़ ग' और 'रे़ ग मं प ग मं रे़ ग' करेंगे तो पूरिया धनाश्री की ही शकल उभरने लगती है। तो इस चर्चा का निष्कर्ष यह है कि पूर्व कल्याण नाम ही सही है और उसका प्रचलन हिंदुस्तानी संगीत के अंदर अण्णासाहब के द्वारा ही हुआ है।

अब 'आज सो बना' को ही लीजिए। उसका मुखड़ा ही कहता है कि यहां पूरिया का संबंध नहीं है। बाद में उसमें 'ए ऽऽ' करके 'ग' स्वरको लगाकर उसे पूरिया कर लेंगे लेकिन उस बंदिश में जो तानें समाविष्ट की गई हैं उनमें पूरिया की कोई स्पष्ट छाप नहीं दिखाई देती। इसके बारेमें एक दूसरा किस्सा बताता हूं। एक बार पं. जगन्नाथबुवा ऊर्फ गुणीदास के पास एक शागिर्द 'होवन लागी सांझ' बंदिश गा रहा था। बुवासाहब उसे उस बंदिश का विस्तार

समझा रहे थे। इसी बीच उनके शिष्य पं. सी. आर. व्यास वहां पहुंचे। शिष्य के जाने के बाद उन्होंने बुवासाहब को बताया कि यह बंदिश वह शिष्य ठीक से नहीं गा रहा था। बुवा भी बोले कि मैंने उसे नहीं सिखाई है, वह गा रहा था, तो उसका विस्तार मैं उसे समझा रहा था। किंतु व्यासजीद्वारा राग का सही चलन मालूम हो जाने पर बुवासाहब को भी अपनी भूल महसूस हुई। एक और बात यह है कि इस राग में जोड़ की बंदिशें भी बहुत कम मिलती हैं। यदि यह पारंपरिक राग रहता तो उसमें और और जोड़ की बंदिशें मिलतीं। एक इधर के वर्षों में बनी 'बहुत दिन बीते' वाली बंदिशों के सिवा और बंदिशें लगभग नहीं हैं। हां, अण्णासाहब ने बहुत दिन बाद उसमें एक तराना बनाया और तत्पश्चात् द्रुत त्रिताल में उन्होंने एक सुंदर बंदिश रचना बना ली।

उसके शब्द हैं –

धन धन भाग, जागे आज मेरे आगम भयो पीको मोरे आली।
गूंध लाओ री मालनियां,
सरस सुगंधित हरवा डारूं गरवा, प्रीत जताऊं॥

इस बंदिश में पूरिया कहीं नहीं दिखेगा आपको।

अन्य नूतन राग

पूर्व कल्याण की तरह ही एक गोपीबसंत नामका राग उन्होंने बनाया। उन्होंने 'दक्षिण' से 'गोपिका वसंत' नामक राग सुना था। उसीका यह हिंदुस्तानी शैली का रूप था। इस राग में सिर्फ अण्णासाहब की ही बंदिशें प्रचलित हैं। किंतु उन्होंने **'सालग वराळी'** नामक जो नया राग सर्जित किया उसका बहुत बोलबाला हुआ। वह प्रसंग ही सुनाने लायक है। जिक्र हो चुका है कि उनकी महफिल में अधिक संख्या प्राय: गायकों और कलाकारों की ही रहती थी। जब कहीं किसी 'सर्कल' में कोई खास प्रोग्राम रहता या ऐसा ही कोई महत्त्वपूर्ण सांगीतिक आयोजन रहता तो अण्णासाहब हर समय कोई न कोई नयी चीज श्रोताओं के सामने प्रस्तुत कर देते थे। १९४६-४७ की बात है। गर्मीकी छुट्टियां थीं। उन तीन महीनों में मैं दो महीने अण्णासाहब के साथ बम्बई रहता और एक महीना अपने गांव माता-पिता के साथ बिताता। इस प्रोग्राम का आयोजन मई महीने में हुआ था, जब मैं वहां नहीं था। हस्बमामूल कुमार जी वहां थे और भटसाहब थे। उस महफिल में अण्णासाहब ने 'सालग वराळी' सर्व प्रथम गुणिजनों को सुनाया। पहले उहोंने कुमार और भट जी को उसकी तालीम दी और तब दोनों को तंबूरे पर साथ में लेकर यह राग पेश किया। सामने बड़े बड़े गायकों की कतार बैठी थी, जिसमें विलायत हुसेनखां, खादिम हुसेन खां जैसे आगरा घराने के उस्ताद भी शामिल थे। अण्णासाहब पंचम तक बढ़ रहे थे, आलाप कर रहे थे, लेकिन मध्यम कहीं दीख नहीं रहा था और इधर तोड़ी का भी आभास हो रहा था। स्वरसंगति कोई ठीक शकल पकड़ में नहीं आ रही थी। श्रोताओं में हलचल शुरू हुई–"क्यों खांसाब, कौन-सा राग है?" "अमा, ठहरो कुछ आगे बढ़ने दो उन्हें" इस तरह की कानाफूसियां होने लगीं। इतने में अण्णासाहब ने शुद्ध धैवत लगाया और लोग चौकन्ने हो गए। तब अण्णासाहब ने सोचा कि इस संदिग्धता को बहुत तानना नहीं चाहिए; उन्होंने थोड़ा रुककर बताया कि इस राग में मेरी एक कल्पना

है। कर्नाटक संगीत में तोड़ी को 'वराळी' कहते हैं। उसमें किसी अन्य रागांग का 'लाग' देकर याने उसका 'स-लग' रूप बनाकर मैंने यह 'सालग वराळी' नामक राग का निर्माण किया है। इस नाम से कोई राग कर्नाटक संगीत में प्रचलित नहीं है, जैसा कि पंत वराळी आदि रागों के नाम सर्वज्ञात हैं। यहां मूल वराळी के साथ दूसरे-दूसरे अंगों का जोड़ देकर यह नया राग मैंने बनाया है।

अब इस राग में उन्होंने जो बंदिश बनाई थी उसने भी लोगों की हैरानी को बढ़ा दिया था। क्योंकि जोड़ की बंदिश के शब्द निहायत उस्तादी ठाठ से और भारी वजन से यों फब रहे थे कि बड़े बड़े गुणिजन यही समझ बैठे कि यह बंदिश सोलह आने पुरानी और पारंपारिक ही हो सकती है। बंदिश के शब्द देखिए–

मन सुमिर साहेब सुलतान आलम।
निजामुद्दीन औलिया, मन॥
कर याद नाम, परवर दिगार, करतार रच्यो संसार।
वही अप्रंपार॥ मन सुमिर .....

इसकी विलंबित उन्होंने की थी– 'आज बधाई बाजे नंद महलमो सखि जनम पियो ब्रिजराज कुंवर' (एकताल)। तो बंदिश में अण्णासाहब शब्दों की योजना भी खास ढंग से करते थे। उनकी बंदिशों की मुख्य विशेषता यह थी कि वे एक ओर परंपरा से जुड़ी हुई थीं तो दूसरी ओर उनमें नये युग की कल्पनाएं भी थीं। यों कहा जाए कि उन्होंने पारंपारिक बंदिशों की धारा को ही आगे बढ़ाया। इसका श्रेय उनके भीतर जो गवैयापन था उसे देना चाहिए। दूसरी बात यह कि उनमें अध्ययनशील वृत्ति जबर्दस्त थी। खैर तो इस राग की विलंबित और द्रुत बंदिशों को और राग को खास तौर पर कुमारजी ही प्रचार में लाए। आकाशवाणी के कार्यक्रमों में, महफिलों में, सर्वत्र उन्होंनें इस राग की धूम मचा दी थी।... यहां मैं जाते-जाते इसी राग से संबंधित और कुमारजी की अध्ययनशील वृत्ति पर प्रकाश डालनेवाला एक संस्मरण बताना चाहूंगा। कुछ १५ एक साल पहले बंबई म्युनिसिपल अकेड़मी में कुमारजी का प्रोग्राम था। हम सब उसमें उपस्थित थे। चाय के वक्त कुमारजी मुझे थोड़ा किनारे ले गए और मुझसे पूछा, "छोटू, तुमसे एक बात पूछनी है। सालगवराळी में निषाद शुद्ध लगती है?" मैंने कहा, "नहीं तो" तब वे बोले, "हमारे पास अण्णासाहब के हाथ के लिखे हुए आलाप हैं। उसमें उन्होंने शुद्ध निषाद लिखा है।" मैंने कहा–"वह काफी अंग से चढ़ी हुई निषाद है, इसलिए शायद उन्होंने शुद्ध निषाद लिखा होगा। तब उन्होंने बताया, "वसुंधरा ने (पत्नी ने) मुझे सालगवराळी सिखाने का आग्रह किया था। तब मैंने उसे कहा कि नहीं, मैंने बहुत सालों से इस राग को गाया नहीं है। मैं बंबई में छोटू से पूछ लूंगा, बाद ही में तुम्हें सिखाऊंगा।" यह थी उनकी ईमानदारी।

अण्णासाहब की बंदिश रचना के संबंध में एक और विशेष बात को रेखांकित करना आवश्यक है। इससे अन्य रचनाकारों को भी कुछ मार्गदर्शन प्राप्त हो सकता है। अण्णासाहब शौकिया तौर पर उठते बैठते बंदिशें बनानेवाले रचनाकार नहीं थे। उनके पास कल्पनाएं, साहित्यज्ञान, भाषाप्रभुत्व, शब्दभंडार और नायकी भरपूर मात्रा में थी। किंतु उन्होंने बंदिशों की रचना के संबंध में तीन दृष्टिकोण अपनाए थे और अंततक उनपर अमल करते रहे। सबसे प्रथम, जिन

रागों में उस जमाने में बंदिशों का अभाव था यानी बंदिशें संख्या में बहुत कम थीं उनकी पूर्ति करने का प्रयास उन्होंने किया। उदाहरण के लिए देसी राग में बंदिशें बहुत कम थीं और आज भी कम ही हैं। 'म्हारे डेरे आओ' ही हम बार बार सुनते हैं और उसके साथ 'मोरा मन हर लीनो' का जोड़। ऐसे और कई राग उस जमाने में 'अप्रचलित' के अंतर्गत आते थे। जैसे नारायणी राग। पं. भातखंडेजी ने इसे दक्षिण में ही सुना था और उसका एक लक्षणगीत बनाया था। - *'नारायण को नाम भज रे मन मेरे ।'* इसके अलावा नारायणी में ख्याल-व्याल कुछ थे नहीं। तब अण्णासाहब ने 'सहेलरियां गाओ री आज' यह द्रुत ख्याल पहले बनाया और *'बमनारे विचार। सगुन भलो री भलो । बालम मेरा परदेसी अत बेधल होत जिया।'* यह विलंबित ख्याल बाद में बनाया, जिसे आजकल श्रीमती मालिनी राजूरकर प्राय: अपनी महफिलों में गाती हैं; जिसकी दीर्घ ध्वनिमुद्रिका (एल.पी.) भी बनी है।

दूसरा उद्देश्य यह था कि किसी राग में बंदिशें तो पर्याप्त हैं। किंतु उस राग का कोई ऐसा सौंदर्यात्मक पहलू है जिसे उद्घाटित करनेवाली बंदिश नहीं है, तो उस पहलू को लेकर वे बंदिश की रचना करते थे। याने किसी राग में कोई स्वरसंगति है जो उस राग का कोई नया ही रंग प्रकट करती है, तो अण्णासाहब उस स्वरसंगतित को रेखांकित करनेवाली बंदिश बनाते थे। उदाहरणार्थ बताता हूं। केदार राग तो बहुत प्रचलित है, उसमें बीसों बंदिशे हैं। लेकिन अण्णासाहब के मन में विचार आया कि मध्यम इसका वादी स्वर है, यह तो ठीक है, लेकिन हम उसके साथ पंचम को क्यों न बढ़ाएं? इस विचार से उन्होंने बंदिश बनाई–

हे ऽ जगत उधार, हे ऽ करतार।
भवभय हार, सब कुछ सार, तुम हो अपार॥
जपत हूं नाम पावन सहज, आनंद पावे, चित मोह सुजान॥

इसी प्रकार केदार में उन्होंने और एक बंदिश बनाई– 'बिरज में रास रच्चो है आज। धूम मची है जमुना तट पर।' इसमें सा नि ध प म का जो प्रयोग मिलता है उसके उदाहरण कहीं नहीं मिलते। इस प्रकार कुछ नया कहना हो, कोई नई सूझ अगर मिले तो उसे प्रकाशित करने के लिए उन्होंने बंदिश बनाई। इसमें 'जमुना तट पर' के गायन में 'तट पर' के लिए 'सा नि ध प म' की योजना कितनी मोहक है।

अण्णासाहब के बनारस के एक मित्र थे, जो उनके शिष्य भी थे, श्री महादेवराव सामंत और जिनका पं. भातखंडेजी से भी संबंध रहा। उन्होंने अण्णासाहब की बंदिशों का गहरा अध्ययन किया है। उनकी बेटी भी गाती है, श्रीमती मंजु सुंदरम्। वसंत कालेज बनारस में प्रोफेसर हैं। वह भी गाती हैं, अणासाहब के पास और मेरे पास सीखी हैं। एक बार श्रीमान सामंतजी ने अण्णासाहब को पत्र में लिखा– ''अण्णाजी, भटियार राग में इस 'उचट गई' बंदिश से अब जी उचट गया। उस 'बरनी न जाइ' का भी अतिरेक हो गया। इन बंदिशों के अलावा कोई नई बंदिश बनाइए न!'' इसपर अण्णासाहब ने मुझे और भटसाहब को कागज पेन्सिल लेनेको कहा और बंदिश बन गई–

'कहियो ब्रिजराज, महाराज। रैन कहां ते गँवाई डगमग चाल॥' लेकिन वहां भी उन्होंने मांड के अंग को उसमें प्रबल दिखाकर एक नया आयाम सर्जित किया।

प्रो. गोविंद नारायण नातू, जो लखनऊ में उपप्राचार्य थे, के साथ अण्णासाहब के बंदिशों

में जवाब चलते, तो भटियार राग की एक बंदिश को लेकर बात छिड़ गई। उन दिनों कुमारजी 'दिन गए बीत सुख के' की बंदिश बहुत गाते थे। इस बंदिश में नायिका की निराशामय दशा का वर्णन है। वह विह्वलता से अपनी पीड़ा व्यक्त करती है। आगे शब्द हैं—

दिन गए बीत दुख के री। पड़ गई लीक स्मृति की मनपटल पै।
अब कौन उपाव मिटाऊं, जतन सब हारे॥

तो प्रो. नातू ने इस बंदिश को सवाल के रूप में अण्णासाहब के सामने फेंक दिया। तो उसके जवाब में अण्णासाहब ने दार्शनिक भाव से भरी एक बंदिश रच डाली, जो आगे बहुत लोकप्रिय हो गई।

तनिक सुन री सत वचन अब। सुख कल्पना दुख कल्पना।
कल्पना ही मन की॥ मन वासना मिटाए, मिटत सब बंद॥
जग जीवन जंजाल भरम को। ताको पार लगाए।
लगे नहीं हाथ कछुहू।
मन अधीन किए सो होत अपार आनंद॥

भाव यह है कि यह सब तुम्हारे मन की वासना है, उसीपर काबू पा जाओ, तो तुम मानसिक पीड़ा से बच सकती हो। इसलिए कहा– 'कछु मन अधीन किए सो होत अपार आनंद।' इस तरह उन्होंने साहित्यिक रचना का जवाब तो दे ही दिया, साथ साथ भटियार में 'ललित' राग का यत्किंचित् 'लाग' देते हुए इस राग को और ज्यादा समृद्ध किया।

याने इस प्रकार एक ही राग में अण्णासाहब की ५-६ बंदिशें भी मिल सकती हैं। और गौड़ मलार में तो उनकी १५-१६ बंदिशें हैं। किंतु सब एक दूसरी से अलग हैं।

एक बार राजाभैयाजी ने राग हमीर की 'चमेली फूल चंपा' को लेकर फरमाइश की (मराठी में)– 'बाबूराव, ह्या चिजेला द्रुत नाही आहे.' अर्थात् इस बंदिश के साथ कोई जोड़वाली द्रुत चीज नहीं मिलती। तब अण्णासाहब ने "मन मोहन ब्रिजराज दुलारो" की बंदिश बनाई। इसी तरह राजाभैयाजी के अनुरोध पर उन्होंने यमन राग में टप ख्याल की भी बंदिश बना दी और 'करीम करतार करतार गरीब नवाज सुनो अरज मोरी आज' यह अति मनोहर जोड़ भी उसके साथ बना दिया।

इस प्रकार अण्णासाहब का मन-मस्तिष्क सांगीतिक कल्पनाओं से भरा रहता था, मानो उनका मन झरने की तरह था। जिस किसी कद्रदान को जरूरत महसूस हो वह उनसे मनमुताबिक बंदिश प्राप्त कर सकता था। ऐसा ही एक वाकया श्रीमान वि. द. अंभईकर के साथ हुआ, जो बंबई में आकाशवाणी पर प्रोड्यूसर थे और आज अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। उन्होंने एक राग 'यमनी हिंडोल' के नाम से बनाया था। राग का स्वरूप तो उनके मन में स्पष्ट था किंतु बंदिशें बनाने का अनुभव न होने से वे अड़ गए थे। उन्होंने एक बार अण्णासाहब को घर पर पधारने का अनुरोध किया और उन्हें अपनी अड़चन बता दी। अपनी कोशिश के तौर पर वे अपने नए राग में शुद्ध कल्याण की 'बोलन लागे पपीहरा' बंदिश गाकर सुनाने लगे। अण्णासाहबने कहा, "अंभईकरजी, आप भूल रहे हैं, इतनी प्रसिद्ध बंदिश को आप अपने राग में फिट कर रहे हैं।" तब उन्होंने अपनी मजबूरी बता दी और उसके बाद अण्णासाहब

ने उन्हें विलंबित और द्रुत की बंदिशें वहीं की वहीं बना दीं।

उल्लेखनीय बात यह है कि अण्णासाहब की यह सर्जनात्मक प्रतिभा आखिर तक वैसी ही बनी रही।

अवकाशग्रहण के बाद जब वे श्रीवल्लभ संगीतालय में मानद निदेशक बनकर रहे तबकी घटना बताता हूं। विद्यालय में त्र्यंबकराव जाधव नामके तबला और सितार के अध्यापक थे। उन्हें सितार सिखाने के लिए कुछ नई नई गतें चाहिए थीं। उन्होंने पं. एस्.सी.आर. भट से इसके बारेमें कहा, तब वे बोले– "तुम अण्णासाहब से क्यों नहीं पूछते?" किंतु जाधवजी तो अण्णासाहब से बात करने तक से डरते और हिचकते थे। भटसाहबने उन्हें तरीका बताया तब उन्होंने अण्णासाहब से कहा– "पंडितजी, आप हमारी क्लास में चलिए ना।" यह उन्होंने इसलिए कहा कि उन्हें मालूम था कि अण्णासाहब कुछ अध्यापकों की कक्षाओं में जाके बैठना पसंद करते थे। जाधवजी की बात सुनकर अण्णासाहब को संतोष हुआ। बाद में जाधवजी को उन्होंने ४५ रागों में विलंबित और द्रुत लय की गतें बनाकर दे दीं। यही नहीं त्र्यंबकराव से उन्होंने यह भी कहा कि इन गतों को अपने नाम पर छाप दीजिए। याने इतनी रचनाएं बनाकर भी उनका श्रेय वे जाधवजी को देने के लिए तैयार थे।

अपनी बंदिशों में सुर और शब्द का संतुलन रखने पर अण्णासाहब का बड़ा ध्यान रहता था। यह तो उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसकी वजह यह है कि उनका सुर और शब्द, दोनों पर प्रभुत्व था। अत: उनकी बंदिशों में बराबर शब्द और सुर का चोली दामन का साथ रहता था और साथ ही गवैयापन। उनकी बंदिशों को गाते समय किसी को क्लेश, विसंवाद या विसंगति का अनुभव नहीं होगा। कोई भी बंदिश लीजिए। झिंझोटी राग की प्रसिद्ध बंदिश को ही लीजिए -

मेरो मन सखी हर लीनो सांवरिया ने। सुंदर सूरत अत रंगभरी चितचोरी।
सुधबुध बिखर गई मोरी सारी॥
(अंतरा) सोवत जागत मन लागी रहत नित। कछु नाही मोहे अब
सूझबूझ आज, लाजकाज देखि देखि री मैं भई वाके चरनन की चेरी॥

यानी जैसी इस बंदिश की स्वरसंगतियां हैं इसीके अनुसार उसके शब्दों की रचना भी है। इसीलिए वह अधिक प्रभावी हो जाती है। लेकिन उसमें एक शर्त है कि इन बंदिशों का गायन मात्राओं को गाने जैसा नहीं होना चाहिए। इन बंदिशों में खास खास विराम-स्थल रहते हैं। उनका प्रयोग करते हुए बंदिश का गायन होना चाहिए। इन विराम-स्थलों (Pauses) की खासियत यह मिलेगी कि वे एक साथ भाव को भी उभारते हैं और लय के सौंदर्य में भी वृद्धि करते हैं।

असाधारण रागप्रभुत्व

एक ही बंदिश को दो रागों में प्रस्तुत करने का भी चमत्कार अण्णासाहब ने किया है। किंतु उसमें सांगीतिक दृष्टि से कोई व्याघात नहीं पैदा हो सकता था। क्योंकि उन्होंने ऐसा केवल तभी किया है जब वैसा करना उनके लिए अत्यावश्यक हो गया। और जहां उन्होंने इस तरह का प्रयोग किया वहां भी वे सौ प्रतिशत सफल रहे हैं। क्योंकि शब्द और सुरपर ही नहीं, रागों पर भी उन्होंने उतना ही अधिकार हासिल कर लिया था। अब इसके लिए उनके जीवन

का एक अद्‌भुत प्रसंग बता देता हूं। ग्वालियर में बरसों से प्रतिवर्ष तानसेन समारोह मनाया जाता है। १९५७ की बात है। उन दिनों ठाकुर जयदेवसिंह आकाशवाणी दिल्ली पर चीफ प्रोड्यूसर थे। उस कार्यक्रम में डॉ. बी. वी. केसकर ने एक कार्यनीति बनाई थी कि समारोह के प्रत्येक सत्र की शुरुआत तानसेन रचित एक ध्रुपद के सामूहिक गायन से हो जाए और तत्पश्चात कलाकारों के एक एक कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाएं। इस तरह से यह आयोजन दो-तीन दिन चलता था। व्यवस्था के अनुसार ठाकुर जयदेवसिंह वगैरह ने कुछ ध्रुपद चुने थे– अलग अलग समय के रागों में। अन्यान्य संस्थाओं के संचालकों के पास उन्होंने ध्रुपद स्वरलिपिसमेत भेज दिए थे और कतिपय संस्थाओं ने अपने ध्रुपद समूहगान के रूप में तैयार भी किए थे।

इन समारोहों के क्रम में इस वर्ष (१९५७) अण्णासाहब को अपने शिष्यों समवेत निमंत्रित किया गया था। उसमें आपका गायन भी निश्चित हुआ था। अण्णासाहब ने मारवा ठाठ के विभास में दो बंदिशें बनाईं, जिनमें तानसेन प्रशस्ति थी। 'रहे नाम तेरो' इन शब्दों से उसका आरंभ है और द्रुत के बोल थे– ''बंधा समां...'' उन दिनों मैं बंबई के भारती विद्याभवन में अध्यापक था। मैंने भी वहां से अपना एक गुट्ट तैयार किया था। अण्णासाहब ने मुझे पत्र लिखा कि तुम पंजाब मेल से आ रहे हो तो मैं भोपाल स्टेशन पर तुम्हारे साथ हो लेता हूं। वह खैरागढ़ से आनेवाले थे। इस प्रकार हमारे दो ग्रुप भोपाल से एक साथ झांसी तक चले। भोपाल से जब गाड़ी चली तब झांसी तक अण्णासाहब ने रेलगाड़ी में ही मुझे दो रचनाओं की तालीम दी। मेरे हाथ में कागज देते हुए कहा, ''गाओ इसको'' फिर उसमें सुधार कराते हुए उन्होंने वे बंदिशें मुझे सिखा दीं। हम ग्वालियर गए। वहां दिल्ली गांधर्व महाविद्यालय के प्राचार्य पं. विनयचंद्र मौद्‌गल्य अपना 'ट्रूप' लेकर उपस्थित हुए थे। विनयचंद्र जी अण्णासाहब को बहुत मानते थे और उन्होंने उनको अपनी संस्था की सलाहकार समिति पर भी रखा था। अण्णासाहब को उन्होंने अनेकों बार दिल्ली निमंत्रित किया था, उनके भाषण कराए थे, अनेक चर्चा-सत्रों में उनको ससम्मान सहभागी किया था। तो अण्णासाहब के पास विनयचंद्रजी गए और कहने लगे, ''पंडितजी मैंने तानसेन का एक ध्रुपद 'खट' राग में समूहगान के लिए तैयार किया है, कृपया इसमें कुछ सुधार की जरूरत हो तो एक नजर आप हमारे समूह को सुन लें और इसे देख लें।'' तो अण्णासाहब तुरंत उनके गुट के स्थान पर गए। उन्होंने खट राग के खास स्वरोच्चारण के बारे में छात्रों को समझाना शुरू किया तो छात्रों को वह सब इतना बेढंगा लगा कि वे हंसने लगे। खैर, अण्णासाहब अपने कमरे में लौट आए, उन्होंने मार्गदर्शकों से इतना ही कहा कि इस ध्रुपद की अवतारणा इसी प्रकार होनी चाहिए।

'विभास' से 'खट'

इसके बाद रात हमने खाना खा लिया। सुबह हम उठे तो अण्णासाहब कहने लगे कि देखो वह मैंने विभास की जो चीज बनाई है, उसे मैं 'खट' में ही गा रहा हूं आज। और क्या आश्चर्य देखते ही देखते उन्होंने विभास की बंदिश के उन शब्दों को तुरंत 'खट' में फेर दिया! मुझे समझाया कि देखो इस तरह से इसे गाना है। उस समय हमारे खेमेके आवास में विलायत हुसेनखां, निसारहुसेनखां, मुश्ताकहुसेनखां, हाफिज अलीखां, सब गुरुजन बैठे हुए थे। उन सबकी उपस्थिति में उन्होंने 'खट' गाया। गजाननबुवा तो इसपर इतने लट्टू हो गए कि उनके पीछे पड़ गए कि अण्णासाहब वह चीज हमको सिखाइए। और बहुत प्रभावी ढंग से उनका वह

गायन संपन्न हुआ। यहां सोचने की बात यह है कि हिंदुस्तानी संगीत की गायकी में 'खट' एक अत्यंत बीहड़ राग माना जाता है। उसमें होनेवाले छः रागों के एकरूप सम्मिश्रण का साधिकार निर्वाह करना बड़े बड़े गवैयों के लिए भी कष्टप्रद मालूम होता है। इसीलिए इस राग में 'विद्याधर गुनियन' को छोड़ और कोई दर्जेदार बंदिश देखने को नहीं मिलती। इधर डॉ. अण्णासाहब रातंजनकर हैं कि मारवा ठाठ के विभास राग में मूलतः रची हुई बंदिश को बड़े बड़े बुजुर्ग गुनिजनों की उपस्थिति में खट राग में यों गा देते हैं कि मानो बंदिश वस्तुतः मूल में इसी राग में बन गई हो। ऐसा था अण्णासाहब का राग-प्रभुत्व!

अण्णासाहब की विशेषता यह थी कि उनके भीतर का रचनाकार हमेशा जागृत रहता था। उसे छेड़ने भर की देरी थी कि वह एकदम सन्नद्ध हो जाता था और रसिक जनों को एक अत्यंत सौंदर्यपूर्ण रचना का लाभ मिलता था। एक बार गुरुवर पोस्ट ग्रेज्युएट की क्लास ले रहे थे। उन्होंने देवगिरी बिलावल का विलंबित ख्याल सिखाना आरंभ किया था। उन्हें गैसेस की तकलीफ रहने के कारण वे प्रायः एक जगह पर बहुत कम बैठते थे, बीच बीच में चहलकदमी करते हुए पढ़ाया करते। तो उस दिन उस क्लास में भटसाहब ने अनुरोध किया कि अण्णासाहब हमें देवगिरी बिलावल की द्रुत बंदिश नहीं मिलती। आप हमें सिखाइए। अण्णासाहब ने तत्काल त्रिताल का ठेका पकड़ने को कहा और घूमते घूमते एक तराने की रचना कर दी और उसे सिखा दिया। और इस राग का यह तराना सभी गान-साधकों के लिए अत्यंत प्रिय हो गया है।

एक बार गर्मियों की छुट्टियों में आकाशवाणी बम्बई पर अण्णासाहब का प्रोग्राम था। याने जब आप छुट्टियों में बंबई आते, तो प्रोड्यूसर दिनकरराव अमेंबल उन्हें 'बुक' कर देते। एक ही दिन में सुबह, शाम और रात की तीन बैठकों में गाने की पद्धति उन दिनों थी। क्योंकि सभी कार्यक्रम सीधे प्रसारित होते थे। अग्रिम रूप में ध्वनिफीती पर रिकार्डिंग कर रखने की व्यवस्था उन दिनों शुरू नहीं हुई थी। तो अण्णासाहब का सुबह का गाना प्रसारित हुआ। फिर शाम को साढ़े पांच बजे का प्रसारण हुआ। अब रातको सवा दस से ग्यारह तक के आखिरी प्रसारण के लिए फिर आना था। मैं और अण्णासाहब के छोटे भाई गजाननराव हम दोनों अण्णासाहब के साथ थे। सोचा गया कि शाम साढ़े छः से रात के दस बजे तक के बीच दूर घर जाकर फिर यहां लौटने के बजाय वहीं कहीं पास में वक्त बिताया जाए। हम लोग लिफ्ट से नीचे उतर रहे थे। संगीत विभाग के प्रोड्यूसर श्री दिनकरराव अमेंबल भी घर जाने के लिए उसी लिफ्ट में आए थे। उन्होंने अण्णासाहब को देखा तो प्रणाम किया और कहा– "पंडितजी, बहुत बढ़िया सुरीला प्रोग्राम रहा आपका। लेकिन .... मेरी एक फर्माइश है। मुझे आपसे साजगिरी सुननी है। कभी मौका निकालेंगे तो बहुत भला होगा।"

दिनकरराव जी विदा हुए और घूमते-टहलते क्रॉस मैदान की तरफ गए। मैदान पर स्व. गोपाल कृष्ण गोखलेजी का जो पुतला है, वहां नीचे बेंच पर हम लोग बैठे। मैं और गजानन कुछ इधर-उधर की बातें कर रहे थे और अण्णासाहब अपने किसी विचार में मशगुल थे। बीच में उन्होंने कहा– "कुछ कागज पेन्सिल है?" गजाननराव ने डाक के लिफाफेनुमा कोई अधूरा टुकड़ा उन्हें दिया। उसपर अण्णासाहब ने कुछ शब्द लिखे। बीच में पास की दूकान पर हमने चाय ली और बेंचपर आके बैठ गए। अण्णासाहब ने मुझे पास बैठने को कहा। कहा कि मैं जो बता रहा हूं वैसा गाओ। राग का नाम तो बताया नहीं। वे गवा रहे थे। वहीं

बैठे बैठे उस बंदिश की तालीम उन्होंने मुझे दे दी और इसी तरह समय बिताते हुए हम करीब पौने दस बजे स्टुडिओ पहुंचे। वहां आधा घंटा पहले पहुंचना था। सुपरवाइजर रत्नकांत रामनाथकर ने पूछा– "क्या गाएंगे आप? एनाउन्समेंट लिखवानी है।" "साजगिरी लिखिए विलंबित एकताल और तराना त्रिताल में।"

दूसरे दिन सुबह आपको बताऊं दिनकररावजी दौड़ते हुए उनके घर पर आए (मैं अण्णासाहब के साथ ही रहता था) और उनके चरण पकड़ कर बोले– "पंडितजी, आज मुझे साजगिरी सुनने को मिली।"

दूसरे एक प्रसंग पर इसी तरह श्री. दिनकरराव अमेम्बल ने अण्णासाहब से 'हेम-नट' की फरमाइश की। उस वक्त दो ही बैठकें उनकी थीं। रात के कार्यक्रम के लिए उनके घर पर गाड़ी आती थी। रेडियो स्टेशन जानेपर उन्होंने एनाउन्समेंट के बारे में हिदायत देते हुए कहा कि इसे हेम-नट करके घोषित न करते हुए 'नट का एक प्रकार' कहकर घोषित कीजिए। इसके पीछे कारण यह था कि अल्लादियाखांसाहब के घराने के गायक तथा आग्रा घराने के गायक 'हेम-नट' गाते हैं लेकिन उसका स्वरूप हेम और नट इन दो रागों के संयोग जैसा नहीं प्रतीत होता। तो उनके हेम-नट पर आक्षेप न आए इस हेतु अण्णासाहब ने उसे नट का एक प्रकार कहलवाया। लेकिन वस्तुत: वह हेम-नट ही गाए थे। इसका सबूत उनकी रचना में मिल सकता है। इस प्रकार अण्णासाहब का रागज्ञान और रचनाकौशल उच्च कोटि का था। अब जैसे मीराबाई की मलार, चंडी की मलार, चंचलसस मलार, परजू की मलार जैसे राग गानेवाले आज कोई नहीं मिलेंगे। लेकिन यदि अण्णासाहब को फरमाइश की जाती तो इन रागों के सही रूपों के दर्शन आपको निश्चय ही प्राप्त होते। मैं यह दावे के साथ कह सकता हूं कि उनके जमाने में उनके जोड़ का विद्वान गायक कलाकार दूसरा कोई नहीं था। उस्ताद फैयाजखांसाहब तक उनको मानते थे। अपने शिष्योंसे वे कहते थे- "श्रीकृष्णा के सामने गाने में बहुत डर लगता है।" यह हमारी सुनी हुई बात है, कल्पना की बात नहीं। लखनऊ पधारते तब कहा करते- "भैया, यहां गाना यानी जरा समझ के गाना पड़ेगा। यहां हमारे श्रीकृष्णा के शागिर्द जो हैं!" इसका मतलब इतना ही है कि खांसाहब की यह भावना थी कि हमारी कला की सच्ची कद्र करनेवाले यहां मिलते हैं। साधारण श्रोता तो उनकी हर हरकत पर 'वाह वाह' करेंगे किंतु 'ये क्या गा रहे हैं और कैसे गा रहे हैं' इसकी भीतरी परख रखनेवाले श्रोता उन्हें लखनऊ में पक्के तौर मिल सकते थे।

जागृत प्रतिभा

अण्णासाहब के नवरागनिर्माण और नई बंदिशों को जानने और सुनने का अवसर तो उनके शिष्यों को समय समय पर मिलता ही था, किंतु इस मामले में मैं बहुत ही बड़भागी रहा हूं। अण्णासाहब की प्रत्येक बंदिश का गवाह और संग्राहक मैं रहा हूं। वे तो मुझे अपनी बंदिशों का 'सेफ डिपाजिट वॉल्ट' कहा करते थे। और उन दिनों मेरी स्मरणशक्ति भी गजब की थी। छात्रदशा में तो और भी अधिक! एक बार सुनी हुई बंदिश मेरे जेहन में तुरंत दर्ज हो जाती थी। इसलिए जब अण्णासाहब कोई बंदिश बनाते तब उसकी पांडुलिपि नोटेशन के साथ सबसे पहले मेरे पास पहुंच जाती थी। वह कहा भी करते कि एक बार यह बंदिश छोटू के 'सेफ डिपाजिट वॉल्ट' में जमा हो जाए तो वह सुरक्षित हो जाती है। कभी भी हम उसकी निकासी

(withdrawl) कर सकते हैं। मैं उनके साथ ही रहता था, तो बंदिश के बनते ही वे मुझे सुना देते और मैं अपने पास नोट करके रख देता। जब वे लखनऊ से बाहर रहते तब डाक से वह बंदिश मेरे पास पहुंचती। उसपर हमेशा उनका एक नोट रहता- "If you like it, preserve it. If you want any alteration, you are free to do it. If you do not like it, throw it into the waste paper basket." [तुम्हें पसंद हो तो रख लो। यदि उसमें सुधार चाहते हो, तो तुम अपने तईं कर सकते हो। अगर नापसंद हो तो इसे फाड़कर फेंक देना।] तो इस कदर अण्णासाहब को मुझमें विश्वास था।

अण्णासाहब की रचनात्मक प्रतिभा इतनी जागृत रहती थी कि जब वे रेलयात्रा पर रहते थे - और ऐसा कई बार होता था - तब अपने फर्स्ट क्लास के एकांत में उनका संगीत-चिंतन चलता रहता था और उसीमें किसी नई बंदिश की रचना बन जाती थी। ऐसे अवसर पर हमारे गुरुवर आनेवाले स्टेशन पर उतर पड़ते और पोस्ट कार्ड पर वह बंदिश लिखकर मेरे पते पर पोस्ट बक्स में डाल देते। इसका एक सबूत भी बताए देता हूं। आकाशवाणी के 'चेन बुकिंग' वाले कार्यक्रमों के सिलसिले में अण्णासाहब दौरे पर थे। राजकोट में उनका कार्यक्रम था। उनके साथ पं. सी. आर. व्यास भी थे (जिनका जिक्र अबतक हो चुका है और जिन्हें इधर 'पद्मभूषण' की उपाधि से भूषित किया गया है)। सौराष्ट्र की उस यात्रा में अण्णासाहब की कुछ बंदिशें बन गईं। उन्होंने वे बंदिशें पोस्ट कार्ड पर लिखीं और व्यासजी के हाथ में थामकर उनसे कहा कि जाके इसे पोस्ट करो। व्यासजी स्टेशन पर उतरे। खुला पोस्ट कार्ड था, सो उन्होंने उसपर नजर दौड़ाई। देखा तो कुछ स्वरलिपियां लिखी हुई हैं और कार्ड पर मेरा पता है। कार्ड को डालकर व्यासजी आए तो उन्होंने कौतूहलवश पूछा कि ये नोटेशन आप छोटू को क्यों भेज रहे हैं? अण्णासाहब बोले, "हां, तो क्या हुआ? मेरी भाषा समझता है वह।" तो इतना विश्वास था उनका।

और इस विश्वास के फलस्वरूप उनकी किताबों की पांडुलिपि बनाना, उनके प्रूफ जांचना आदि की जिम्मेदारी बराबर मेरी रही। यह तो नहीं था कि हरेक बंदिशें मेरे सामने बनी हो। मेरे परोक्ष में भी कई एक बंदिशें बनती थीं। लेकिन उन सबकी रचनात्मक विशेषता को मैं तुरंत समझ जाता था। क्योंकि उनकी कल्पना क्या है, वे क्या कहना चाहते हैं, इस मैं भलीभांति जानता था। इसीलिए जब कभी फुरसत के वक्त हम दोनों साथ बैठते या कभी सफर करते होते तो वे कहते, "वह मेरी फलानी चीज जरा सुनाओ तो।" या कॉलेज पर कोई मेहमान आते और उन्हें अपनी कोई रचना वे सुनाना चाहते तो मुझे पुकारते और कोई खास बंदिश सुनाने के लिए कहते। वह यह भी कहा करते कि मैं जो कहना चाहता हूं वह तुम्हारे गले से प्रभावी बनकर आता है। इन सारी घटनाओं की वजह से उनकी तमाम बंदिशें मुझे कंठगत हो गई थीं।

वस्तुत: अण्णासाहब की बंदिशों का पुस्तक रूप में प्रकाशन बहुत पहले हो जाना चाहिए था। अण्णासाहब इसके लिए बहुत उत्सुक नहीं थे। हम शिष्यों ने और हितैषियों ने उन्हें उसके लिए आग्रह किया। उसका भी एक कारण था। हुआ था यह कि चूंकि अण्णासाहब

.....

* *इस पत्र की हस्तलिपि परिशिष्ट में है।*

अपनी बंदिशों में अपने नाम की मुद्रा हर समय नहीं रखते थे, इसलिए उनकी बंदिशों को पारंपरिक बंदिशें समझकर लोग उन्हें गाने लगे थे। उनके बनाए एकाध नए राग की भी कुछ ऐसी ही हालत हो रही थी। अब मसलन 'गोपीबसंत', जिस विषय में बताया गया है। वस्तुत: यह राग दक्षिण के 'गोपिका वसंत' के ढर्रे पर अण्णासाहब ने निर्मित किया था। वह राग इतना चलने लगा कि कइयों ने उसमें बंदिशें भी बना डालीं; यह समझकर कि चलो इस पारंपरिक राग में हम भी अपनी रचना बनाएं। याने इस राग का सर्जन डॉ. रातंजनकरजी ने किया है, इसका ज्ञान उन्हें नहीं रहता था। हम सबने सोचा कि यदि ऐसा ही होता रहा तो संगीत-क्षेत्र की दृष्टि से वह हितकर नहीं और गुरुवर के लिए अन्यायकारक भी है। फिर १९४९ में 'अभिनव गीत मंजरी' का पहला भाग प्रकाशित हुआ, जिसमें ७५ बंदिशें संग्रहीत हैं। उसके बाद १९६१ में 'अभिनव गीत मंजरी' दूसरे भाग का पूर्वार्ध और १९६२ में उत्तरार्ध प्रकाशित हुआ।*

अण्णासाहबे के पास समस्त रागों की ओर विश्लेषणात्मक और संश्लेषणात्मक दृष्टि से देखने की अद्‌भुत सामर्थ्य थी। उनकी दूसरी विशेषता उनकी थी रचनात्मक प्रतिभा। इसे केवल अपूर्व ही कहना होगा। वे बैठे हैं, शिष्य या कोई एक राग गा रहा है, ये सुन रहे हैं और बीच में ही इनके मन में कोई प्रेरणा जाग उठती थी और उस एक राग को सुनने के सिलसिले में ही मन में किसी और राग के आलाप तैयार हो जाते थे। उनके राग-ज्ञान की ऐसी गहराई और ऐसी विशालता थी कि श्री वल्लभ संगीतालय में मेरी कक्षा के समय अण्णासाहब ने शंकरा को सुनते हुए यमनी बिलावल का तराना रच डाला था। एक घटना 'रजनी कल्याण' राग से संबंधित है। स्व. पं. शंकरराव बोड़स को तो जानते ही हैं, पं. विष्णु दिगंबरजी के शिष्य और कानपुर के गांधर्व विद्यालय के संचालक आकाशवाणी के प्रोग्राम के सिलसिले में अक्सर लखनऊ आया करते। हमारे साथ ही ठहरते। उन दिनों यात्रा-व्यय की बचत के लिए बाहर के कलाकारों के एक साथ दो कार्यक्रम प्रसारित हुआ करते थे, पहले दिन को और फिर तीसरे दिन को। एक दिन बीच का खाली रहता था। तो फिर खानगी महफिल हो जाना आवश्यक ही था। जहां दो कलाकार मिल गए वहां संगीतसंवाद और पारस्परिक गायन होना ही है।

ऐसे ही एक अवसर पर पं. शंकररावजी ने उस अतिथि-प्रकोष्ठ में अपना गायन प्रस्तुत किया। कुछ १०-१२ व्यक्ति श्रोता के रूप में उपस्थित थे। क्योंकि कॉलेज के माहौल में जिस किसी कोने से तंबूरे की आवाज कान पर आ जाती वहां श्रोतागण अपने आप जाते थे। तो शंकरराव एक राग गा रहे थे। अण्णासाहब भी बैठे थे। बाद में आपकी बारी आई। तो बैठे बैठे तंबूरे उसी सुर में मिला लिए और एक कल्पना मन में लेकर ये शुरू हो गए। उन्होंने कोमल निषाद को 'सा' बनाया। तंबूरे तो षड्‌ज में ही मिले थे; किंतु इन्होंने कोमल निषाद में अपने स्वर को कायम कर लिया। और उस स्वर को आधार बनाकर 'कल्याण' गाने लगे। फल यह हुआ कि उस विशेष 'षड्‌ज' के कारण 'कल्याण' का रूप कुछ न्यारा ही प्रतीत होने लगा। क्योंकि तंबूरे पर हम सुन रहे हैं साऽऽ, सा रे ग म प ध नि सां, सां नि ध प म ग रे सा।

.....

** इन सबकी प्रतियां बिक चुकी हैं। अत: 'आचार्य एस्. एन्. रातंजनकर प्रतिष्ठान' के द्वारा पुनर्गठित रूप में एवं उनकी अप्रकाशित बंदिशों के साथ उसके प्रथम भाग का पुनर्प्रकाशन १९९० में और दूसरे भाग का १९९२ में किया गया है। शेष तृतीय भाग १९९४ में प्रकाशित होगा।*

यह अब कल्याण ठाठ के अंदर एक भेद बन गया। उसमें निषाद की मूर्च्छना का अंतर्भाव था। यह निषाद की मूर्च्छना 'रजनी मूर्च्छना' के नाम से पहचानी जाती है। इसीलिए उसगायन-प्रस्तुति के दौरान यह जो नया राग बन गया, उसका नामकरण हुआ - 'रजनी कल्याण'। रिषभ को प्रबल रखकर उन्होंने वादी बना दिया। जैसे हमारा गोरख कल्याण राग है, उसकी निर्मिति निषाद की मूर्च्छना से ही हुई है। इस प्रकार 'नि सा रे ग प म प ध नी। नी ध प म ग रे सा नी।' वाली 'रजनी मूर्च्छना' से यह रजनी कल्याण बना। आगे चलकर उसका प्रचलन बड़े पैमाने पर होता रहा। महाराष्ट्र के जाने-माने गायक स्व. डॉ. वसंतराव देशपांडे तो इस राग पर बहुत ही लट्टू थे। हमेशा अपनी बैठकों में इस राग को पेश करते थे।

इसके लिए भी एक घटना हुई कि बम्बई में उस्ताद विलायतहुसेन खांसाहब की पुण्यतिथि के अवसर पर हरि माधव वैद्य हॉल में डॉ. वसंतरावजी का गायन हुआ। उनके साथ श्रीमान पु. ल. देशपांडे भी आए थे। पिछले दिन रात को हम रातंजनकर-शिष्यों ने रजनी कल्याण सुनाया था। वसंतरावजी ने वह सुना और उन्हें वह बहुत पसंद आया। उस महफिल में नए तौर पर ही यह राग प्रस्तुत हो रहा था। लोग असमंजस में पड़े कि यह कोमल निषाद को 'सा' कैसे बनाया जा रहा है। कौन-सा प्रकार चल रहा है यह! तब अण्णासाहब खुद उठकर मंच पर गए और उन्होंने समझाया कि इस राग का विश्लेषण इस प्रकार है। अब संगीत-प्रेमी तो जानते हैं कि हमारे डॉ. वसंतराव अत्यंत मेधावी गायक थे। वे स्वयं भी अपने गायन में स्वर संक्रमण का प्रयोग बहुत किया करते थे। वह विश्लेषण तुरंत उनके दिमाग में पैठ गया और वे उस राग के प्रेमी बन गए। हम देख सकते हैं कि 'सालग वराळी' के पीछे भी रजनी कल्याण के जैसी ही विचारप्रणाली अण्णासाहब ने अपनाई है।

एक राग अण्णासाहब ने 'कुमुद्वती' नाम से बनाया। सन १९६६ में, जब वे शरद्काल में अपने परम स्नेही श्री महादेवराव सामंत के यहां (वाराणसी में) ठहरे हुए थे। (श्री. सामन्त का उल्लेख भटियार राग के संदर्भ में हम पहले कर चुके हैं) उनकी कन्या और अण्णासाहब की शिष्या (आज) श्रीमती मंजु सुंदरम् वहींपर थी। शाम के समय श्री सामंत के साथ संगीत संबंधी विविध विषयों पर वार्तालाप हो रहा था। इस बातचीत के दौरान ही अण्णासाहब ने इस राग का सृजन किया। इस राग के पीछे भेद यह है कि यों देखें तो उसमें 'दुर्गा' के ही स्वर हैं। केवल आरोह में तीव्र मध्यम का प्रयोग होता है। जैसे सा रे म प ध सां। सां ध प म रे सा।' यह तो उसका सीधा सादा आरोह-अवरोह का चलन हुआ लेकिन केवल आरोह-अवरोह से तो राग नहीं बन सकते। अण्णासाहब की खूबी यह रही कि उन्होंने इस मूर्च्छना में कामोद के रागांग का आभास समाविष्ट कर दिया। जैसे - रे म प ध म रे प, प म प ध रें, सां रें मं प मं प सा रे, रे सां रे मं प ध, म प ध सां, प प म रे॥ इसमें कामोद का आभास स्पष्ट झलकता है। अत: यह राग कामोदनुमा याने कामोदवत् हो गया, सो उसका नाम कुमुद्वती रखा गया।

यहां यह देखा जाए कि इन सभी रागों के नाम कितने अर्थपूर्ण और सांकेतिक प्रतीत होते हैं!

यही तो अण्णासाहब की खूबी है। उनका बनाया कोई भी राग उठा लीजिए आपको उसके नामकरण में ही उसके सांगीतिक व्यक्तित्व का संकेत मिल जाएगा। रजनी कल्याण, सालग वराळी, कुमुद्वती, पूर्वकल्याण - सभी ऐसे ही नामाभिधान हैं। एक बार मिया मलार गा रहे

थे। तो गाते-गाते एक नया ही संवाद-तत्त्व उनकी अंतश्चेतना में उभरने लगा जिसमें मलार और केदार का संवाद जमने लगा था। जब राग बन गया तब उन्होंने उसका नाम रखा सावनी केदार। अब इसमें सोचने की बात यह है कि यहां सावनी उपपद के लिए कोई एक भावसंदर्भ है। अपना जो आम सावनी राग है उससे इसका कोई ताल्लुक नहीं। यों देखें तो हमेशा गाए जानेवाले सावनी राग का नाम राग के भावसंदर्भ से नहीं जुड़ा है। यहां सावनी शब्द का सावन से और सावन का वर्षाऋतु से मेल बैठता है। पूर्वांग में मियां मलार और उत्तरांग में मलुहा केदार यह उसका स्वरूप है। सावनी केदार के 'सोलहु शृंगार किए सजि सजनी' इस मुखड़े में इसलिए उसको मलुहा केदार का अंग कहेंगे, शुद्ध गंधार का नहीं।

अब यहां जाते-जाते एक बात का जिक्र करना अस्थान में नहीं होगा। देखा जाता है कि बहुत-से नए रागों के नामों का उनके स्वरूप के साथ मेल नहीं बैठता। आजकल ये कोटियां होने लगी हैं। परंपरा में भी ऐसा मिलता है। जैसे तिलक कामोद। इसमें तिलक और कामोद कहां हैं? जैतश्री ऐसा ही नाम है। यही बात पूरिया धनाश्री की है। वस्तुतः पूरिया और धनाश्री स्वतंत्र राग हैं और पूरिया धनाश्री एकदम स्वतंत्र राग है। इन रागों का स्वरूप पहले कुछ रहा होगा, कालक्रम से उसमें किस तरह परिवर्तन होता गया इसे हम नहीं जान सकते। क्योंकि लोकरुचि के लिहाज से कलाकार अपने प्रयोग करते हैं और मूल रूप में कई बदलाव आ जाते हैं। ऐसी हालत में पूरिया धनाश्री राग गाते समय धनाश्री के अंग का निर्वाह करने की बात पीछे छूट गई होगी।

हमारे दादागुरु पं. भातखंडे जी ने रागरूप के लिए बंदिशों का प्रामाण्य स्वीकार किया। वही इस दिशा में सुरक्षित मार्ग है। पारंपरिक बंदिशें उन्हें जो मिलीं उन्हें वे गाते, मनन करते। उनका जो स्वरूप अपनी नजरों में आया उसके आधार पर उन्होंने रागों के लक्षण बांधे। तो फिर अपने विषय पर आने की दृष्टि से मैं कहूंगा कि अण्णासाहब को अपने निजी चिंतन-मनन के दौरान जो नई-नई कल्पनाएं सूझती थीं उसके जरिए वे नए रागों तथा बंदिशों के माध्यम से उन्हें संगीत-संसार के सामने प्रस्तुत कर देते। इसलिए रागों का नामकरण भी पूरी सूझ-बूझ के साथ वह करते। लेकिन ध्यान रहे, उसमें उनका यह दावा कभी नहीं रहता कि देखो, मैंने क्या नई वस्तु बनाई! कभी ऐसा भी हुआ है कि उन्होंने एक नया राग बनाया और उसकी कल्पना उन्हें प्राचीन ग्रंथों में बाद को प्राप्त हुई। तब उन्होंने मुक्त मन से उसे स्वीकार किया और अपने प्रतिपादन में संशोधन भी किया। सालग वराळी का ही उदाहरण है। उसके संबंध में मैंने जो बातें कहीं उसी वक्त इसका भी उल्लेख होना चाहिए था। एक बार हम पं. अहोबल का 'संगीत पारिजात' ग्रंथ पढ़ रहे थे। अण्णासाहब के मार्गदर्शन में हमारा रागाध्ययन चल रहा था। तो देखते-देखते राग मेघनाद पर उनकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने देखा तो उसका चलन पूरा-पूरा सालग वराळी का ही है। पंडित अहोबलाचार्य ने मेघनाद के वर्ज्यावर्ज्य, उसके वादी-संवादी, उसका विस्तार सब दिया हुआ है और नितांत रूप में सालग वराळी के जैसा ही है। उन्होंने तुरंत हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि देखो सालग वराळी के दर्शन यहां हो रहे हैं। तो कहने का मतलब, पं. अहोबल के समय में यह राग मेघनाद के नाम से प्रचार में रहा होगा और बाद में लुप्त हुआ होगा। इस प्रकार अण्णासाहब ने गीत मंजरी के दूसरे संस्करण (१९४९) में इस राग के साथ टिप्पणी जोड़ दी कि प्राचीन संगीत ग्रंथ 'पारिजात' में इस राग को मेघनाद नाम से जाना गया है। अण्णासाहब अपनी कला के प्रति कितने समर्पित थे,

इसका सबूत यहां मिलता है। अपने गुरुवर पं. भातखंडेजी के समान ही वे सच्चे 'रिसर्च स्कालर' थे। उन्होंने भी अपने ग्रंथों में निर्व्याज भाव से स्वीकृत किया है कि अमुक राग का जो स्वरूप हमें मिला है, वह इस प्रकार है। इन महापुरुषों को अपने नाम का ढिंढोरा पीटना नहीं था। संगीत के लिए उन्होंने पूर्णरूपेण अपने को समर्पित कर दिया था।

अण्णासाहब की बंदिशों की एक अनुपूरक विशेषता थी सृष्टिचारित्र्य के विविध विषयों का चुनाव। उन्होंने पुराने पिटे-पिटाए विषयों की अपेक्षा युगानुकूल नए विषयों पर बंदिशें रचने का उपक्रम अपनाया। सास-ननद और पिया-प्यारी की बातों से बाहर आकर जीवनानुभूति के और और संदर्भों पर आधारित काव्य-रचना उन्होंने की। इसी सिलसिले में महान गायकों की प्रशस्ति में भी उन्होंने बंदिशें बनाईं।

महान गायकों की प्रशस्ति में उन्होंने जो बंदिशें लिखी हैं, उसकी प्रेरणा उनके भीतर तो थी ही, किंतु कुछ बाहरी कारण भी उसके पीछे थे। तानसेन की प्रशस्ति में 'बंधा समां सुर लय राग ताल सो' की बंदिश के बारेमें बताया ही गया है। अण्णासाहब ने शुरू के दिनों में ही अपने गुरुवर पं. भातखंडे की प्रशंसा में बंदिश बनाई थी, जिसका जिक्र हो चुका है। लेकिन गायक प्रशस्तिवाली बंदिशों के अंतर्गत उन्होंने पं. विष्णु दिगंबरजी के यशोगान के रूप में जो एकाधिक रचनाएं की हैं उनका बयान करना बहुत आवश्यक है। संगीत-संसार में अद्यावधि यह भ्रम फैला हुआ है कि पं. भातखंडे और उनकी परंपरा एवं विष्णु दिगंबर और उनकी परंपरा के दो खेमे हैं। दोनो पक्षों में एक तरह की दुश्मनी है। किंतु वस्तुस्थिति इसके एकदम विपरीत है। एक क्षणार्ध्द का विषयांतर करके कहूंगा कि यदि ऐसी स्थितियां रहतीं तो दिल्ली के गांधर्व महाविद्यालय में प्राचार्य पं. विनयचंद्र मौद्गल्य ने अण्णासाहब को परामर्शदायी समिति पर न लिया होता, समय समय पर संगोष्ठियों और सभाओं में उन्हें बराबर निमंत्रित न किया होता। अण्णासाहब ने पं. विष्णु दिगंबर जी की स्तुति में जो पदरचनाएं की थीं उनमें से दो-एक रचनाएं 'संगीत कला विहार' में उसी काल (५०-५५ में) प्रकाशित भी हुई थीं। अब इसके आगे की बात भी ध्यान खींचनेवाली है। श्रीवल्लभ संगीतालय में अण्णासाहब की ही प्रेरणा से. पं. भातखंडे और पं. विष्णु दिगंबर की पुण्यतिथि एक ही दिन संयुक्त रूप में मनाने की परंपरा कायम हुई थी, जो आज भी जारी है।

अब पं. विष्णु दिगंबर के प्रति अण्णासाहब के मन में नितांत आदरभाव था, जिसके दर्शन हमें उनकी अंग्रेजी में लिखी हुई लघु आत्मकथा में हो सकते हैं। परंतु उनकी प्रशस्ति में बंदिश बनाने के लिए यह भी एक बाहरी कारण रहा - पुण्यतिथि का। अण्णासाहब ने ऐसे तीन-चार गीत बनाए हैं। उदाहरण के लिए काफी राग का यह गीत -

नमो नमो गुणि गंधर्व चरण।
सुस्वर कंठ मधुरतातें बस भयो सकल संसार तिहारे।
धन्य गुणि गंधर्व कहायो॥

एक बार प्रो. बी. आर. देवधर किसी समारोह के उद्घाटक की हैसियत से श्रीवल्लभ संगीतालय पधारे थे। एक रचना पं. भातखंडेजी की स्तुति में और एक रचना पं. विष्णु दिगंबर की स्तुति में हमने समूहगान में प्रस्तुत की। देवधरजी ने मुझसे कहा - "गिंडे, यह चीज हमें दे दो, हम 'संगीत कला विहार' में छापेंगे।" उस वक्त अण्णासाहब भी वहां थे। बाद में हमने उनसे

कहा - "अण्णासाहब एक ही एक बंदिश गा के हम ऊब गए हैं" तो उन्होंने कहा, "दूसरी लो।" और गौड़ मलार में 'विप्र दिगंबर जन्म लियो है' बंदिश बन गई।

लक्षणीय रचना

हम रचनाकार के रूप में अण्णासाहब की विशेषताओं पर बात कर रहे हैं, तो उनके लक्षणगीतों पर विचार होना अत्यावश्यक ही है। हिंदुस्थानी संगीत के क्षेत्र में लक्षण-गीत की संकल्पना पं. भातखंडेजी की है और वे ही इसके प्रवर्तक रहे हैं। यों मूल कल्पना उनकी नहीं है। जब अपने अनुसंधान के सिलसिले में कर्नाटक संगीत के विद्वानों के साथ उनका संपर्क हुआ तब उन्होंने पाया कि इस संगीत-प्रणाली में हर राग के लिए लक्षण-गीत मौजूद है। विशेषत: वहां दीक्षितार संप्रदाय में लक्षण गीतों की पद्धति है। कर्नाटक संगीत की त्रिमूर्ति है - त्यागराज, श्यामशास्त्री और मुथुस्वामी दीक्षितार। पं. भातखंडेजी ने दीक्षितार परंपरा का अनुसरण अपने लक्षण-गीतों में किया है। कर्नाटक संगीत के आचार्य व्यंकटमखी इस दीक्षितार परंपरा में ही आते हैं। पं. भातखंडेजी ने ही हमारे संगीत के अंतर्गत रागों के लक्षण बतानेवाले स्वतंत्र गीतों की रचना को प्रचलित किया। उन्होंने न केवल हरेक राग के लक्षणगीत लिखे, बल्कि राग के हर पहलू को उन्होंने लक्षणगीतों द्वारा समझाया। इसके पीछे उनकी खास शैक्षिक दृष्टि थी। उनका एक उद्देश्य यह भी रहा कि जो सूरदास (याने अंध) संगीत-छात्र होंगे, जो अनपढ़ होंगे वे भी इन गीतों को कंठस्थ करके रागज्ञान को अवगत कर सकेंगे। कुछ उदाहरण बताएंगे - (१) सप्त सुरन के नाम बखाने सा रे ग म प ध नि सां। सां नि ध प मग रे सा॥ (२) दस ठाठों के बारे में कहना हो तो - दसविधि ठाठ चतुर्भुज माने। 'यमन, बिलावल और खमाजी। भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसा, भैरवी तोड़ी, बखानी॥' (३) राग समय के लिए "तीन वर्ग 'रिध तीवर तीवर ग' प्रथम त्रय संधी प्रकाश अपर त्रय जागो। गनी कोमल निश्चित अंतिम॥"

इस प्रकार अलग अलग पहलुओं पर पंडितजी ने लक्षण-गीत बनाए। अब अण्णासाहब को पाठ्यक्रम के अनुसार नए सिरे से कुछ लक्षण-गीतों की रचना करनी पड़ी तब उन्होंने अपने गुरुमहोदय की परंपरा को ही आगे बढ़ाया और पाठ्य-पुस्तक के हिसाब से कई रागों के लक्षण-गीत उन्होंने लिखे। लेकिन इस बारेमें मेरी धारणा यह है कि इस कार्य में वे पंडितजी से एक सीढ़ी आगे बढ़े हुए थे। हां, हरेक राग के लक्षण-गीत उन्होंने नहीं बनाए। जहां पर उनको सूझा वहां उन्होंने उसकी रचना की, जैसे 'रामकली' का लक्षणगीत। उन्होंने खंबावती का विलंबित ख्याल लक्षणगीत के रूप में बनाया है। उसके शब्द हैं -

नाद नगर बसायो आज। राग जुगल सुंदर मेल रचायो॥
देस के संग झिंझोटी मिलाओ। बीच चमके सुर मांड॥

इसी प्रकार विलासखानी तोड़ी का लक्षणगीत देखिए-

'विलसे अत नारी सुरागिनी। भैरवी होत निराली रंग रस की खानी॥'....इत्यादि।

कभी ख्याल के रूप में लक्षण-गीत बन जाता था तो कभी ध्रुपद के रूप में। उनके लक्षण-गीतों में रागों के नाम का आधार लेकर कहने की शैली थी। जैसे हमने 'विलसे अत नारी' में देखा। इसीके साथ कभी वे अपने को संबोधित करते हुए रचना करते थे। जैसे- 'ऐ ऽऽ सुनो

सुजनवा रागनी को।' इस मिया मलार के लक्षण-गीत में दो निषादों का प्रयोग आपको मिलेगा। 'सुजनु अब राग खमाज सुनो।' में भी ऐसा ही संबोधन है। रागनाम के आधार के कुछ और उदाहरण भी देखे जाएं (१) 'सजत कानर अब का ऽ नर' में कानडा राग है। (२) मलि-हरि संजोगिनी रंजनी। सुनो सुजनवा रागिनी-' में मलार का वर्णन है।

इसमें तिलमात्र संदेह नहीं कि अण्णासाहब महान वाग्गेयकार थे। कि उनके जोड़ का कोई अन्य वाग्गेयकार आधुनिक युग में मेरे देखने में नहीं आया। इस संदर्भ में बीसवीं शताब्दी में तो आपका ही नाम सर्वोपरि रहेगा। बंदिश के धातु और मातु दोनों पक्षों पर उनका अधिकार तो था ही लेकिन धातु और मातु के बीच जो संतुलन और न्याय होना चाहिए उसके दर्शन अण्णासाहब की रचनाओं में विशेष रूप में मिलते हैं। नवराग-निर्माण, बंदिश रचना, लक्षणगीत किसी भी स्तर पर देखें उनका अपना एक पैमाना है, जिसपर वे सदा के लिए याने आखिर तक स्थिरपद रहे।

हमने अबतक डॉ. रातंजनकरजी के व्यक्तित्व के अलग अलग पहलुओं को भरसक निकटता से जान लिया और इस पूरे विवेचन में उनके 'विद्यागुरु' के स्वरूप के संकेत बराबर मिलते गए। किंतु उनके इस पहलू को अधिक जान लेने की आवश्यकता है। इसी प्रकार उनके व्यक्तित्व के कुछ और पहलू और उनका पारिवारिक जीवन आदि के बारे में भी जिज्ञासुओं में कुतूहल हो सकता है। अगले अध्यायों में यही देखना है।